<u>उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय, नैनीताल</u>

<u>रिट याचिका (आपराधिक) नं. 1157/2022</u>

सतविंद्र सिंह उर्फ सोनू..... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तराखंड राज्य और अन्य.....प्रतिउत्तरदाता

उपस्थितिः श्री एस0के0 मंडल, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता।

श्री योगेश पंत, कैविएटकर्ता के विद्वान अधिवक्ता।

श्री जे0एस0 विर्क उप महाधिवक्ता के साथ श्री आर0के0जोशी राज्य के लिए विद्वान वाद धारक।

<u>सुनवाई और निर्णय की तिथिः 04.07.2022</u>

<u>श्री संजय कुमार मिश्रा, जे।</u>

1. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. इस रिट याचिका (आपराधिक) को दायर करके, याचिकाकर्ता ने अपराध सं0 137/2022 अंतर्गत धारा 323, 427, 504 और 506 भा0द0सं0(संक्षिप्तता के लिए इसके बाद ''संहिता'' के रूप में संदर्भित) थाना खटीमा, जिला उधम सिंह नगर की प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 05.06.2022 को उत्प्रेषण रिट जारी करते हुए रद्द करने की याचना किया है। विद्वान उप महाधिवक्ता के द्वारा मामले के गुण दोष पर बहस करते समय हमारे संज्ञान में यह तथ्य लाया गया है कि इसी बीच संहिता की धारा 307 और 341 के भी अपराध की बढोत्तरी की गयी है और शायद अभिरक्षात्मक पूछताछ के बाद अपराध अंतर्गत आयुद्ध अधिनियम 1959 के प्रावधानों की भी बढोत्तरी संभव है।

3. शिकायतकर्ता ने एक प्रथम सूचना रिपोर्ट यह कहते हुए दर्ज करायी थी कि याचिकाकर्ता और उसके मध्य विवाद है। दिनांक 04.06.2022 को समय लगभग 10:00 बजे जब वह अपनी ऑल्टो कार में घर लौट रहा था, सड़क पर, उसे याचिकाकर्ता द्वारा रोक किया गया और उस पर हमला किया गया और उसकी कार क्षतिग्रस्त हो गई, फिर उसने उस पर/शिकायतकर्ता पर गोली चला दी, लेकिन वह अंधेरा का लाभ उठाकर खेतों की तरफ भाग गया और याचिकाकर्ता शिकायतकर्ता की हत्या नहीं कर सका। उक्त रिपोर्ट पर उपरोक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गयी है।

4. इस स्तर पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के द्वारा यह तर्क दिया

गया कि शिकायतकर्ता ने याचिकाकर्ता के साथ संपत्ति के संबंध में धन के भुगतान के संबंध में उनके बीच विवाद के कारण याचिकाकर्ता के विरूद्ध झूठी प्राथमिकी दर्ज की है। उन्होंने सबूतों के साथ छेड़छाड़ करके किसी अन्य व्यक्ति के खिलाफ झूठा आपराधिक मामला शुरू करने के संबंध में शिकायतकर्ता के खिलाफ पुलिस द्वारा दर्ज प्राथमिकी पर भी भरोसा किया है।

5. हमने अभिलेखों के साथ–साथ पक्षकारों की ओर से अधिवक्ता द्वारा पेश की गई दलीलों को सावधानीपूर्वक परीक्षण किया। इस स्तर पर यह विवादित नहीं है कि शिकायतकर्ता द्वारा एक प्राथमिकी दर्ज की गई है और दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 161 के तहत उसका बयान जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया है, जिसमें उसने विशेष रूप से याचिकाकर्ता को फंसाया है और कहा है कि उस पर हमला किया गया था, उसकी कार को क्षतिग्रस्त किया गया था और उस पर गोली चलाई गई थी। यहां पर कुछ विवरणात्मक कमियां है जैसे कि अपराध में प्रयुक्त हथियार का विवरण जिसके द्वारा शिकायतकर्ता पर कथित गोली चलायी गई थी परंतु यह स्पष्ट है कि शिकायतकर्ता पर गोली शिकायतकर्ता पर एक आग्नेयास्त्र से चलाई गई थी।

6. इस स्तर पर, वास्तव में, उप महाधिवक्ता निर्देशों के अनुरूप यह कहते है कि अन्वेषण के अनुक्रम में अन्वेषण अधिकारी के द्वारा शिकायतकर्ता की कार क्षतिग्रस्त हालत मे पाया गया और घटनास्थल से दो खाली कारतूस बरामद कर सील किये गये। निःसेदह जांच अभी तक पूरी नहीं हुई है। याचिकाकर्ता को न तो गिरफ्तार किया गया है और न ही वह जांच अधिकारी के सामने पेश हुआ है।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के द्वारा **''मेसर्स निहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड'' बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 315** के रिपोर्ट पर किये गये मामले पर भरोसा करेगा। ''जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 482 के तहत आवेदन के निस्तारण के संबंध में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दाखिल प्रार्थना पत्र के संबंध में निर्देश जारी किया है। जिनको ध्यान में रखते हुए कुछ सम्प्रेक्षण जो वर्तमान मामले में भी लागू होते है, यह न्यायालय इय तथ्य से अवगत है कि पुलिस को संज्ञेय अपराध के मामले की जांच करने के लिए संहिता के अध्याय 14 के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत एक वैधानिक अधिकार और कर्तव्य प्राप्त है। आगे यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि यह केवल उन मामलों में है, जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में गैर–संज्ञेय अपराध या अन्य किसी भी प्रकार का अपराध है, न्यायालय अन्वेषण जारी रखने की अनुमति नहीं देगा। एक प्रथम सूचना रिपोर्ट की जांच करते समय, जिसे रद्द करने की मांग की गयी हो, न्यायालय शिकायतकर्ता की प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों की वास्तविकता या

अन्यथा रूप में जांच प्रारंभ नहीं कर सकती है। शिकायत/प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करना एक नियम के बजाय एक अपवाद होना चाहिए। हालांकि, इसके साथ ही न्यायालय यदि उचित समझती है तो विधि द्वारा स्थापित मानको और मापदंडों को अपनाते हुए स्वयं को रोक भी सकती है। विशेष रूप से माननीय सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा **"आर0पी0 कपूर बनाम पंजाब राज्य ए. आई. आर. 1960 एस. सी. 866"** के मामले में निर्धारित मापदंडों के अनुसार न्यायालय के पास शिकायतकर्ता की एफ. आई. आर. को रद्द करने का अधिकार क्षेत्र है। जब कथित अभियुक्त के द्वारा प्राथमिकी को रद्द करने की प्रार्थना की जाती है, और जब न्यायालय धारा 482 द0प्र0सं0 के तहत या भारतीय संविधान अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति का प्रयोग करता है, तो केवल इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या प्राथमिकी में आरोप एक संज्ञेय अपराध के होने का दर्शित करते हैं या नहीं। न्यायालय को आरोपों के गुण–दोष के आधार पर इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है और न्यायालय को अन्वेषण एजेंसी को प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों की जांच करने की अनुमति देनी होगी।

इस मामले में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के द्वारा यह कहा गया कि कुछ तथ्यों के छुपाव के कारण प्रथम सूचना रिपोर्ट की अंतरवस्तु झूठी है। वह प्राथमिकी में किसी अंतर्निहित कमी की ओर इशारा नहीं करते हैं या यह नहीं कहते हैं कि ऐसे आरोप लगाने वाली प्राथमिकी असंभव है। इसके अलावा, जैसा कि हमने पहले ही पैराग्राफ में उल्लेख किया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में शिकायतकर्ता द्वारा लगाए गए आरोप इस तथ्य से समर्थित हैं कि जांच के दौरान, शिकायतकर्ता की कार क्षतिग्रस्त पाई गई और मौके से दो खाली कारतूस पाए गए। इसलिए, हमारी राय है कि यह ऐसा मामला नहीं है जहां प्रारंभिक चरण में प्राथमिकी को रद्द किया जाना चाहिए। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने ऐसा कोई तर्क नहीं उठाया है जिसमें याचिकाकर्ता के खिलाफ दर्ज प्राथमिकी को रद्द करने से इनकार करने से स्पष्ट रूप से न्याय की विफलता होगी। मामले के उस दृष्टिकोण से, हम एफआईआर को रद्द करने के लिए इच्छुक नहीं हैं।

8. इस संबंध में दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न जो उठाया गया है वह यह है कि धारा 506 के तहत अपराध उत्तराखंड राज्य में गैर–संज्ञेय है, क्योंकि केंद्रीय कानून दंड संहिता की धारा 506 के तहत अपराध को गैर–संज्ञेय और जमानती अपराध के रूप में बताता है। हालाँकि, यह देखना में आया है कि यू0पी0 संशोधन अधिनियम, 1961, धारा 506 के तहत अपराध को न केवल संज्ञेय बनाया गया है, बल्कि अजमानती भी बनाया गया है।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया है कि चूंकि इस संशोधन को उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 87 के तहत पारित

किसी भी आदेश द्वारा शामिल नहीं किया गया है, इसलिए अपराध को गैर–संज्ञेय और जमानती अपराध माना जाएगा। उन्होंने यह भी कहा है कि प्रारंभिक चरण में, चूंकि आईपीसी की धारा 307 और 341 के तहत अपराध को प्रथम सूचना रिपोर्ट में शामिल नहीं किया गया था, इसलिए पुलिस ने मामले की जांच में अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर कार्य किया है।

10. दूसरी तरफ राज्य के साथ–साथ शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया है कि उत्तर प्रदेश संशोधन या 2000 में राज्य के पुनर्गठन से पहले उत्तर प्रदेश राज्य पर लागू होने वाले कानूनों को उत्तराखंड राज्य के क्षेत्रीय क्षेत्र में लागू करने का प्रश्न पहले ही समाप्त हो चुका है और यह अब पुनः एकीकरण नहीं है। उनके द्वारा **''सुमन देवी और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य (2021) 6 एससीसी 163''** के रिपोर्ट किए गए मामले पर भरोसा किया गया है। सम्पूर्ण मामले की समीक्षा के लिए हमें उत्तर प्रदेश पुर्नगठन अधिनियम 2000 की धारा 86, 87 और 88 के प्रावधानों को विचार में लेना होगा। जिन्हें निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा रहा हैः–

''86. विधियों की प्रादेशिक सीमा– *भाग 2 के उपबंध की बाबत यह नहीं समझा जाएगा कि उनसे उन राज्य क्षेत्रों में, जिन पर नियत दिन के ठीक पूर्व प्रवृत्त उत्तर प्रदेश अधिकतम जोत सीमा अधिरोपण अधिनियम, 1961 (U-P-) 1961 का अधिनियम 9) और कोई विधि विस्तारित होती है या लागू होती है, कोई परिवर्तन हुआ है और ऐसी किसी विधि में उत्तर प्रदेश राज्य के संबंध में राज्य क्षेत्रीय निर्देशों का जब तक कि सक्षम विधान मंडल या अन्य समक्ष प्राधिकारी द्वारा अन्यथा उपबंधित न कर दिया जाए, तब तक वही अर्थ लगाया जाएगा मानो वे नियत दिन के पूर्व विद्यमान उत्तर प्रदेश राज्य के भीतर है।*

''87. *नियत दिन से पूर्व बनाई गई किसी विधि के उत्तर प्रदेश राज्य या उत्तरांचल राज्य के संबंध में लागू होने को सुकर बनाने के प्रयोजनार्थ समुचित सरकार उस उस दिन से दो वर्ष की समाप्ति से पहले, आदेश द्वारा, विधि के ऐसे अनुकूलन और उपांतर चाहे वे निरसन के रूप में हो या संशोधन के रूप में हों, जो आवश्यक या समीचीन हों, और कर सकेगी और तब ऐसी प्रत्येक विधि, जब तक सक्षम विधानमंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा परिवर्तित, निरसित या संशोधित न दी जाए, तब तक इस प्रकार किए गए अनुकूलन और उपांतरों के अधीन रहते हुए प्रभावी होगी।*

स्पष्टीकरण– *इस धारा में ''समुचित सरकार'' पद से अभिप्रेत है संघ सूची में प्रगणित किसी विषय से संबंधित किसी विधि के बारे में केन्द्रीय सरकार और अन्य विधि के बारे में उसके किसी राज्य को लागू होने की दशा में राज्य सरकार।*

88. विधियों के अर्थान्वयन की शक्ति– *इस बात के होते हुए भी कि*

नियत दिन से पूर्व बनाई गई विधि के अनुकूलन के लिए धारा 87 के अधीन कोई उपबंध या अपर्याप्त उपबंध नहीं किया गया है, या अपर्याप्त उपबंध किया गया है, ऐसी विधि को प्रवर्तित करने के लिए अपेक्षित या सशक्त कोई न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकारी, उत्तर प्रदेश या उत्तरांचल राज्य के संबंध में उसके लागू होने को सुगम बनाने के प्रयोजनार्थ से, उस विधि का अर्थान्वयन, सार पर प्रभाव डाले बिना ऐसी रीति से कर सकेगा जो यथास्थिति उस न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकारी के समक्ष मामले की बाबत आवश्यक या उचित हो।

11. "सुमन देवी और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य (2021) 6 एस. सी. सी. 163" के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम की पूरी योजना, विशेष रूप से ऊपर उद्धृत प्रावधानों पर विचार करने के बाद, निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचा हैः (उपरोक्त निर्णय की चरण सं0 27, 28 और 29)

***27.** पुर्नगठन अधिनियम की धारा 28 के द्वारा नवस्थापित उत्तराखंड उच्च न्यायालय को कानूनों के संबंध में वही अधिकार क्षेत्र, शक्तियां और अधिकार प्राप्त थे, जिसे नियत दिन से ठीक पहले इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किया जा सकता था।*

***28.** पुनर्गठन अधिनियम के प्रावधानों को व्यापक रूप से पढ़ने से पता चलता है कि पूर्ववर्ती उत्तर प्रदेश राज्य में लागू कानून नए राज्य उत्तराखंड के निर्माण के बाद भी जारी रहे। धारा 87 का प्रभाव केवल राज्य और न्यायालयों को इसके बाद मौजूदा कानूनों को लागू करने के लिए बाध्य करने का था, जिस हद तक उन्हें पुनर्गठन अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से 2 वर्ष की अवधि के भीतर संशोधित किया गया था। यदि अपीलार्थी सही हैं, तो अनुकूलन आदेश में किसी कानून या विनियमन को केवल लोप कर देने से मौजूदा कानूनों के संबंध में एक खालीपन पैदा करने का विनाशकारी प्रभाव पड़ेगा, जिनका विशेष रूप से उल्लेख नहीं किया गया है। दूसरे शब्दों में, अनुकूलन की शक्ति का मतलब केवल यह था कि ऐसे कानून जिनके लिए कोई भी परिवर्तन या अनुकूलन आवश्यक था उन्हें दो वर्ष के भीतर परिवर्तित या अनुकूलित किया जा सके। परिवर्तन और अनुकूलन के प्रयास के अभाव में सभी कानून, नियम, विनियम या वैधानिक आदेश जो उत्तर प्रदेश में लागू थे बिना किसी परिवर्तन के लागू हुए माने जाएगे।*

***29**. इस न्यायालय ने अपीलार्थी के इस तर्क को अयोग्य माना है कि राज्य मार्च 2016 में जारी किये गये विज्ञापन में निर्धारित मानदंडों से बाध्य था, भले ही उस अधिसूचना के खंड 7 में स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किया गया था कि ए.एन.एम. के लिए भर्ती वैधानिक नियमों के अनुसार होगी। सुसंगत शैक्षणिक*

योग्यता (विज्ञान स्ट्रीम वर्ग के साथ इंटरमीडिएट या समकक्ष योग्यता) का लोप किया जाना राज्य को मौजूदा नियमों का पालन करने के अपने दायित्व से मुक्त नहीं करती। यह विवादित नहीं है कि 1998 में संशोधन के बाद 1997 के नियमों में यह अनिवार्य किया गया था कि एएनएम या स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के रूप में भर्ती होने के इच्छुक उम्मीदवारों के पास आवश्यक एएनएम प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम के अलावा विज्ञान वर्ग के साथ इंटरमीडिएट पास (या इसके समकक्ष) सहित शैक्षिक योग्यता होनी चाहिए। उत्तराखंड राज्य के निर्माण के बाद भी यह स्थिति अपरिवर्तित रही। यह केवल 2016 में था, जब संबंधित भर्ती के लिए नियमों को बदल दिया गया और विज्ञापन प्रकाशित किया गया था। नए नियमों ने 2010–2013 की अवधि के लिए और उसके बाद, जुलाई 2016 के बाद, विज्ञान विषयों के साथ इंटरमीडिएट स्तर को अर्हता प्राप्त करने की आवश्यकता को कम कर दिया। अन्य सभी अवधियों के लिए, अनिवार्य विज्ञान वर्ग योग्यता के साथ इंटरमीडिएट या समकक्ष पास की बुनियादी शैक्षिक योग्यता एक आवश्यक शर्त बनी रही। इसलिए, यह तर्क कि राज्य अपने निर्दिष्ट मानकों से बाध्य था (विज्ञापन में जिसमें विज्ञान के साथ इंटरमीडिएट की शैक्षिक योग्यता के रूप में कोई उल्लेख नहीं किया गया था) राज्य को वैधानिक नियमों को लागू करने के दायित्व से मुक्त नहीं करता था। यह दावा करने में बहुत देर हो चुकी है कि किसी भी प्रकार का अवरोध राज्य के खिलाफ काम कर सकता है ताकि वह कानून या प्रचलित नियमों के विपरीत वादे को लागू करने के लिए मजबूर हो सके जो वैधानिक रूप से प्रभावी हैं। इसलिए अपीलार्थियों की ओर से इस आशय के सभी तर्क खारिज किए जाते हैं। इसके अलावा, यह याद रखना उपयोगी है कि किसी सार्वजनिक पद या सेवा के लिए किसी उम्मीदवार या आवेदक की पात्रता, प्रासंगिक विज्ञापन और प्रचलित सेवा नियमों के संदर्भ में, ऐसे पद या सेवा के लिए आवेदन प्राप्त करने की अंतिम तिथि के अनुसार तय की जानी है। इस स्थिति को स्थायी प्राधिकारी द्वारा मान्यता प्राप्त है। ***अशोक कुमार शर्मा बनाम चंद्र शेखर*** *में इस न्यायालय की तीन–न्यायाधीशों की पीठ ने इस संदर्भ में फैसला दिया है कि:*

"6... *यह अच्छी तरह से स्थापित है कि यह प्रस्ताव कि जहां आवेदन दाखिल करने की अंतिम तिथि के रूप में किसी विशेष तिथि को निर्धारित करने के लिए आवेदन आमंत्रित किए जाते हैं, उम्मीदवारों की पात्रता को उस तिथि और केवल उस तिथि के संदर्भ में आंका जाना चाहिए। एक व्यक्ति जो ऐसी निध ार्रित तिथि के बाद निर्धारित योग्यता प्राप्त करता है, उस पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया जा सकता है। आवेदनों के लिए जारी/प्रकाशित एक विज्ञापन या अधिसूचना जनता के लिए एक प्रतिनिधित्व का गठन करती है और इसे जारी करने वाला प्राधिकरण इस तरह के प्रतिनिधित्व से बाध्य है। वह*

इसके विपरीत कार्य नहीं कर सकता।

12. ''अभिलेखों से यह दर्शित है कि अनुकूलन करने की शक्ति का अर्थ केवल यह था कि ऐसे कानून जिन्हें कुछ संशोधनों या अनुकूलन की आवश्यकता होती है, उन्हें परिभाषित अवधि 2 वर्ष के भीतर संशोधित या अनुकूलित किया जा सकता है। अनुकूलन और संशोधन की ऐसी किसी भी कार्यवाही के अभाव में, उत्तर प्रदेश राज्य में लागू सभी कानून, नियम, विनियम और वैधानिक आदेश उत्तराखंड राज्य में बिना किसी परिवर्तन के लागू होंगे।

13. वर्तमान मामले को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय की राय है कि उत्तर प्रदेश विधानमंडल द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता में संशोधन दंड संहिता की धारा 506 के तहत अपराध को गैर–जमानती और संज्ञेय बनाना उत्तराखंड राज्य पर भी लागू होता है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि संहिता की धारा 506 के तहत अपराध उत्तराखंड राज्य में गैर–संज्ञेय अपराध है, बलहीन है।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य का सहारा लेकर निर्णयासार में अंतर करने की कोशिश की है कि उक्त कानून सेवा विधिशास्त्र से संबंधित है और आपराधिक मामलों में लागू नहीं होता है, यह तर्क ना केवल अनुचित है, बल्कि अयुक्तियुक्त है सही अर्थों में **''सुमन देवी और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य (2021) 6 एससीसी 163''** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश विधान सभा द्वारा उत्तराखंड राज्य में पुनर्गठन पर किए गए नियमों, अधिनियमों, विनियमों और संशोधनों की प्रयोज्यता से संबंधित सामान्य कानून का अर्थान्वयन किया है। इस प्रकार **''सुमन देवी और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य** (ऊपर) में प्रतिपादित विधि व्यवस्था सभी मामलों पर लागू होते हैं चाहे वह आपराधिक परीक्षण हो या यह सेवा न्यायशास्त्र हो या यह सिविल न्यायनिर्णयन से संबंधित मामला हो।

15. अंत में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के द्वारा **मेसर्स निहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य (उपर्युक्त)** के चरण सं0 15 और 16 पर तर्क दिया गया कि भले ही प्राथमिकी रद्द नहीं की जाती है, दोनों पहलुओं के बीच संतुलन बनाए रखना होगा और न्यायालय को याचिकाकर्ता को किसी प्रकार का संरक्षण देना चाहिए, ताकि वह जांच अधिकारी के समक्ष उपस्थित हो सके और अपने मामले को रख सके तथा याचिकाकर्ता और शिकायतकर्ता को सुनने के बाद, जांच अधिकारी को याचिकाकर्ता को गिरफ्तार करने या न करने का निर्णय लेना चाहिए। निहारिका के निर्णय के मामले में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिन विभिन्न चरणों पर भरोसा किया गया है, उनका सकारण विनिश्चय स्वीकार किये जाने योग्य नहीं है और इस

तरह की कार्रवाई के विरूद्ध है।

16. बेहतर मूल्यांकन के उद्देश्य से, हम उपरोक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपयोग की गई सटीक भाषा पर ध्यान देते हैं, जिसमें उच्च न्यायालयों द्वारा बिना कोई कारण बताए स्थगन का आदेश देने में कुछ निर्णयों में अनुकूलित पाठ्यक्रम की आलोचना की गई है। मेसर्स निहारिका के फैसले के चरण संख्या 15 और 16 नीचे उद्धृत किए गए हैंः–

*"**15.** जैसा कि ऊपर देखा गया है, कुछ ऐसे मामले हो सकते हैं जहां आपराधिक कार्यवाही की शुरुआत कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग हो सकती है। ऐसे मामलों में, और केवल असाधारण मामलों में और जहां यह पाया जाता है कि गैर–हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप न्याय हत्या होगी, उच्च न्यायालय, धारा 482 द0प्र0सं0 के तहत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए और/अथवा भारत के संविधान का अनुच्छेद 226 के अंतर्गत एफ. आई. आर/शिकायत/आपराधिक कार्यवाही को निरस्त कर सकता है या आगे की जाँच पर रोक भी लगा सकता है। हालांकि, उच्च न्यायालय को प्रारंभिक चरण में आपराधिक कार्यवाही में हस्तक्षेप करने में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। एफआईआर/शिकायत दर्ज करने के तुरंत बाद दायर याचिका को रद्द करना और पुलिस को एफआईआर/शिकायत के आरोपों की जांच करने के लिए पर्याप्त समय नहीं दिया जाना जो कि दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के तहत पुलिस का वैधानिक अधिकार/कर्तव्य है। इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि धारा 482 द0प्र0सं0 के तहत शक्ति अत्यंत व्यापक है, लेकिन जैसा कि इस न्यायालय द्वारा ऊपर निर्दिष्ट निर्णयों में कहा गया है, व्यापक शक्ति प्रयोग करने के लिए न्यायालय को अधिक सतर्कता होने की आवश्यकता होती है और यह न्यायालय पर एक भारी और अधिक मेहनती कर्तव्य डालता है। इसलिए, असाधारण मामलों में, जब उच्च न्यायालय इसे उचित समझता है, तो रद्द करने के मापदंडों और कानून द्वारा लगाए गए आत्म–संयम को ध्यान में रखते हुए, उचित अंतरिम आदेश पारित कर सकता है, जैसा कि कानून में उचित माना जाता है, हालांकि, उच्च न्यायालय को संक्षिप्त कारण देने होंगे जो अदालत द्वारा प्रासंगिक तथ्यों पर मस्तिष्क के अनुप्रयोग को प्रतिबिंबित करेंगे।*

***16.** हमने उच्च न्यायालयों द्वारा गिरफ्तारी पर रोक लगाने के अंतरिम आदेश पारित करने और/अथवा धारा 482 द0प्र0सं0 और/अथवा भारत के संविधान का अनुच्छेद 226 के अंतर्गत कार्यवाही को रद्द करने में ''आरोपी के खिलाफ कोई दंडात्मक कदम नहीं उठाए जाने'' के कई आदेश कारणों को निर्दिष्ट करने के साथ पारित किए हैं, हमारे पास ऐसे बहुत सारे उच्च न्यायालय के आदेश पारित किये गये है जिनमें रद्दकरण याचिका को खारिज करने, या ध*

ाारा 173 द0प्र0सं0 के अंतर्गत आरोप पत्र/अंतिम रिपोर्ट दाखिल होने तक आरोपी की गिरफ्तारी पर रोक लगाने के संबंध में दाखिल किये गये है। जैसा कि उपर सम्प्रेक्षित किया गया है कि विवेचना के दौरान संज्ञेय मामले के संबंध में साक्ष्य एकत्रित करना पुलिस का कर्तव्य होने के साथ–साथ एक वैधानिक अधिकार भी है। अभिरक्षा जांच की आवश्यकता हो सकती है जिसके लिए अभियुक्त को पुलिस अभिरक्षा में होना आवश्यक है (जिसे रिमांड के रूप में जाना जाता है) इसलिए, गिरफ्तारी नहीं करने और/अथवा ''कोई दंडात्मक कदम नहीं उठाने'' के कारण बताए बिना इस प्रकार के व्यापक अंतरिम आदेश पारित करने से जांच में बाधा आएगी और द0प्र0सं0 के प्रावधानों के तहत दिए गए संज्ञेय अपराध की जांच करने के लिए पुलिस के वैधानिक अधिकार/कर्तव्य को प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए, इस तरह का एक व्यापक आदेश बिल्कुल भी उचित नहीं है। उच्च न्यायालय के आदेश को उन कारणों का खुलासा करना चाहिए कि उसने धारा 482 द0प्र0सं0 के तहत कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान अंतरिम निर्देश क्यों पारित किया है। इस तरह के कारण, भले ही संक्षिप्त हों, मस्तिष्क के अनुप्रयोग को दर्शित करने चाहिए।

उपर्युक्त पर दूसरे दृष्टिकोण से भी विचार करने की आवश्यकता है। इस तरह का व्यापक आदेश देने से न केवल जांच पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, बल्कि कानून के शासन को बनाए रखने के लिए इसके दूरगामी निहितार्थ होंगे। जहां अन्वेषण लंबे समय तक रोकी जाती है, भले ही रोक अंततः हटा ली जाती है, बाद के अन्वेषण इस साधारण कारण से बहुत उपयोगी नहीं हो सकती है तथा सबूत अब उपलब्ध नहीं हो सकते हैं। इसलिए, यदि प्राथमिकी/शिकायत में नामित आरोपी को अपनी गिरफ्तारी की आशंका है, तो उसके पास धारा 438 द0प्र0सं0 के तहत अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने का उपाय है और धारा 438 द0प्र0सं0के तहत अग्रिम जमानत के अनुदान की शर्तों पर संतुष्टि के आधार पर मिल सकती है तथा वह सक्षम न्यायालय द्वारा अग्रिम जमानत पर अवमुक्त किया जा सकता है। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि आरोपी उपचारविहीन है। यह विवादित नहीं किया जा सकता है कि धारा 438 द0प्र0सं0 के तहत अग्रिम जमानत धारा 438 द0प्र0सं0 के तहत निर्धारित शर्तों पर संतुष्टि के आधार पर दिया जा सकता है। साथ ही, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि जब भी किसी संज्ञेय अपराध की प्राथमिकी दर्ज की जाती है तो गिरफ्तारी आवश्यक नहीं है। फिर भी यदि कोई व्यक्ति संज्ञेय अपराध दर्शित करने वाली प्राथमिकी के संबंध में अपनी गिरफ्तारी की आशंका करता है, जैसा कि यहां ऊपर देखा गया है, तो उसके पास धारा 438 द0प्र0सं0 के तहत अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने का उपाय है, जैसा कि इस न्यायालय ने ***हेमा मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2014) 4 एस. सी. सी. 453*** *के मामले में मत व्यक्त*

किया है, यद्यपि उच्च न्यायालयों को अनुच्छेद 226 के अधीन बहुत व्यापक शक्तियां हैं, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन शक्तियों का प्रयोग न्याय की विफलता को रोकने और अभियुक्त व्यक्तियों की अंधाधुंध गिरफ्तारी करने वाले प्राधिकारियों द्वारा विधि प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए किया जाना है। यह भी देखा गया है कि अनुच्छेद 226 के तहत ऐसी याचिका पर विचार करने में, उच्च न्यायालय से दोनों हितों को संतुलित करने की अपेक्षा की जाती है। एक ओर, न्यायालय को यह सुनिश्चित करना है कि अनुच्छेद 226 के तहत ऐसी शक्ति का उदारतापूर्वक प्रयोग नहीं किया जाना है ताकि इसे धारा 438 द0प्र0सं0 कह कार्यवाही में परिवर्तित किया जा सके, यह भी कहा गया है कि दूसरी ओर जब भी उच्च न्यायालय यह पाता है कि किसी दिए गए मामले में यदि पूर्व–गिरफ्तारी के विरुद्ध संरक्षण नहीं दिया जाता है, तो यह न्याय हत्या होगा और मुकदमा लंबित रहने तक गिरफ्तारी के लिए कोई मामला नहीं बनाया जाता है, तो उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए अग्रिम जमानत की प्रकृति में राहत देने के लिए स्वतंत्र होगा, यह ध्यान में रखते हुए कि इस शक्ति का उपयोग उन मामलों में संयम से किया जाना चाहिए जहां यह पूरी तरह से आवश्यक और उचित है। इसलिए, इस प्रकार का व्यापक अंतरिम आदेश की गिरफ्तार ना किया जाए अथवा कोई उत्पीडन, कोई प्रपीड़क कदम ना उठाये जाए नियमित रूप में यांत्रिक रूप से और नियमित रूप से प्रदान नहीं किया जा सकता।

17. इस प्रकार, इस न्यायालय की राय है कि जब यह निष्कर्ष आता है कि याचिकाकर्ता द्वारा अपने अधिवक्ता के माध्यम से उठाई गई दलीलें स्वीकार्य नहीं हैं, तो याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी पर रोक लगाने का किसी भी प्रकार का आदेश देना उचित नहीं होगा, जो कि जांच एजेंसी का पूर्ण अधिकार क्षेत्र है, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए उचित सामग्री के बिना कि एफआईआर को ही रद्द कर दिया जाना चाहिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत आपराधिक रिट याचिका को खारिज करते हुए, न्यायालय को याचिकाकर्ता के पक्ष में संरक्षण के लिए कोई आदेश पारित नहीं करना चाहिए।

18. इसलिए, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि रिट याचिका में कोई योग्यता नहीं है, तदनुसार, इसे खारिज किया जाता है।

(संजय कुमार मिश्रा, जे।)

04.07.2022